INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS
VOLUME 2, ISSUE 10 October, 2014
ISSN-2320-2882

ORIGINAL ARTICLE

# गीता में स्वधर्म की अवधारणा और उसकी प्रासंगिकता

डॉ. जितेन्द्र शर्मा

'एसोसियेट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र, महात्मा गॉधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट, सतना, म.प्र.

## शोध आलेख सार

*स्वकर्तव्य का अज्ञान और कर्तव्य की बलिवेदी पर सर्वस्व समर्पण की अदम्य संकल्प शक्ति का अभाव ही वर्तमान समग्र राष्ट्रीय समस्याओं का मूल है। हममें से प्रत्येक नागरिक काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मात्सर्य में आकंठ डूबा हुआ स्वकर्तव्य को विस्मृत कर चुका है। स्वधर्म का तात्पर्य है स्वकर्तव्य अर्थात् अपने वर्ण के अनुसार अपनी सामाजिक स्थिति के अनुसार कर्म करने से है। अपने गुण और स्वभाव के अनुसार अपने कर्तव्य का स्वयं चयन कर लेना ही स्वधर्म है। यह अत्यन्त ही व्यापक धारणा है जिसमें मनुष्य के सामाजिक दायित्व, उसकी शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के अनुसार उसकी कार्य करने की क्षमता, उसका स्वभाव, रूचियॉ, सामर्थ्य सबका समावेश हो जाता है। वर्ण व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में स्वधर्म की व्याख्या करते हुये कहा जा सकता है कि अपनी सामाजिक स्थिति और जिम्मेदारी के अनुसार जिसको जो पद (स्थान) मिला हुआ है उससे संबंधित कर्तव्य का पालन करना ही स्वधर्म है। परन्तु एक बार कर्तव्य (स्वधर्म) का चयन कर लेने के उपरान्त मृत्यु भले ही हो जाय उसका परित्याग नहीं करना चाहिये।*

कोई भी कर्म स्वयं में उत्तम या अधम नहीं होता अपितु वह उसी मात्रा में प्रशंसनीय होता है जिस मात्रा में उसमें परकल्याण की भावना निहित होती है। परहित भावना से किया गया कर्म चाहे वह एक राजनेता का हो प्रहरी या न्यायाधीश का हो अथवा हो जल्लाद या सफाई कर्मचारी का समान रूप से स्तुत्य व प्रशंसनीय है। ऐसे स्वधर्म का पालन समस्त कामनाओं और भोगों का पूर्णतः त्याग कर निःस्पृह, ममता रहित और अहंकारशून्य होकर भगवान को समर्पित करके करना चाहिये। वैश्विक स्तर पर स्वधर्म का अर्थ उन कर्तव्यों से होता है जिससे बसुधैव कुटुम्बकम और विश्ववारा संस्कृति का सम्पोषण होता है। आज हमारे समक्ष विद्यमान समस्त संकटों और चुनौतियों का समाधान गीता के स्वधर्म सम्प्रत्यय के चिंतन, मनन और अनुपालन में है।

विभिन्न विचार पद्धतियों को एक समन्वयात्मक सूत्र में निबद्ध कर उनमें लोक कल्याण की भावना का संचार करने वाली गीता महाभारत के भीष्म पर्व का अंश है। वस्तुतः गीता जीवन का शाश्वत गीत है। इसके शब्द और शब्दों में समाये अर्थ सदा ही नये बने रहते हैं और देश–काल की सीमा को तोड़ते हुये अपनी सार्वकालिक अर्थवत्ता सदैव कायम रखते

हैं। तथापि आइये गीता में स्वधर्म की अवधारणा और उसकी वर्तमान प्रासंगिकता का नीर–क्षीर विवेचन करें।

जब भी किसी विषय की प्रासंगिकता के निरूपण का प्रश्न आता है, तो उसका सीधा सा अर्थ होता है कि वह विषय वर्तमान कालिक समस्याओं के समाधान में कहॉ तक उपयोगी है? इस निकष को दृष्टिगत रखते हुये, कुछ क्षण के लिये हम वैश्विक समस्याओं को छोड़कर मात्र भारतीय समस्याओं की ही चर्चा करें और देखें कि सर्वशास्त्रमयी गीता का ज्ञान उनके समाधान में कहॉ तक उपयोगी है? देश की वर्तमान समस्याओं पर प्रकाश डालता हुआ प्रस्तुत है दैनिक समाचार पत्र 'आज' के दिनांक 12 फरवरी, 2013 के सम्पादकीय लेख का कुछ अंश........ कानून व्यवस्था की हालत देश–प्रदेश सर्वत्र विगड़ती नजर आ रही है। न्याय के लिये अन्याय करना पड़ता है। कौन–किसको कितना न्याय दिलाता है यह हर विभाग की समस्या है। पुलिस विभाग, राजस्व विभाग, शिक्षा विभाग, लोक निर्माण, जनकल्याण सब जगह व्यवस्था चरमरा गयी है। न्याय दिलाने के मामले में 97 देशों की सूची में भारत का 78 वॉ स्थान है। ब्लडजस्टिस द्वारा रूल ऑफ ला इण्डेक्स 2012 शीर्षक से जारी एक रिपोर्ट में कहा गया है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक देश भारत में न्यायिक प्रक्रिया बहुत धीमी है।[1]

भ्रष्टाचार हमारे यहॉ एक संस्था का रूप ले चुका है। इन कीमती घोटालों का खेल कितना लम्बा है, यह कहानी बहुत लम्बी है। लेकिन राष्ट्र मंडल खेल, टूजी स्पेक्ट्रम, कोयला घोटाला, हेलीकाप्टर घोटाला जैसे घोटाले जनता के पैसे की खुली लूट की गवाही देते हैं। आज की स्थिति यह है कि हमारा लोकतन्त्र अब लोक लाज से एकदम नहीं चल रहा बल्कि यह निर्लज्जों के हवाले हो गया है, इसलिये घपले, घोटाले, लूटपाट, भ्रष्टाचार, नेताओं की अपात्रता नहीं बन पा रहे हैं। मंत्री हो या सन्तरी, नेता हो या अभियन्ता, बाबू हो या नौकरशाह सभी तो आकंठ डूबे हैं भ्रष्टाचार और कदाचार के महापंक में। कार्य संस्कृति का तो मानों इस देश से बंटाधार ही हो गया है। क्या–क्या कहूँ और किस–किस की गिनती कराऊँ, राजनेताओं का कंचन कामिनी के प्रति बढ़ता अनुराग, शासकों और राजकर्मियों का गिरता राष्ट्रीय चरित्र आज राष्ट्रीय संकट का विषय बन गया है। राष्ट्र कवि दिनकर की ये पंक्तियॉ देश की वर्तमान स्थिति का कितना क्रूर सत्य प्रस्तुत करती हैं –

बेचैन हैं हवायें, सब ओर बेकली हैं,
कोई नहीं बताता किस्ती किधर चली है।
मॅझधार है भॅवर है या पास है किनारा
यह नाश आ रहा या सौभाग्य का सितारा
कोई मुझे बता दे क्या आज हो रहा है?
मुॅह को छिपा तिमिर में क्यों तेज रो रहा है?[2]

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि इन सब समस्याओं के मूल में है क्या? उत्तर स्पष्ट है– स्वकर्तव्य का अज्ञान और कर्तव्य की बलिवेदी पर सर्वस्व समर्पण की अदम्य संकल्प शक्ति का अभाव। हममें से प्रत्येक नागरिक काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य के बाहुपाश में जकड़ा हुआ स्वकर्तव्य को विस्मृत कर चुका है। राष्ट्र की तरूणायी को आलस्य का घुन लग गया है। किंकर्तब्यविमूढ़ करोड़ों युवा भारतीयों में भरना होगा, पृथा पुत्र अर्जुन का पौरुष और जगाना होगा उन्हें आलस्य और अकर्मण्यता की नींद से। शंखनाद करना पड़ेगा। क्लैब्यं मा स्मगमः पार्थ। अर्थात् स्वधर्म का ज्ञान और उसका पालन ही वह मूलमन्त्र है जिसके द्वारा उक्त समस्त समस्याओं का समवेत निराकरण किया जा सकता है। कर्तव्य पंथ से विमुख और निस्तेज अर्जुन को इसी स्वधर्म का पाठ पढ़ाते हुये योगेश्वर कृष्ण कहते हैं–

*श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।*
*स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।*[3]

अर्थात् स्वधर्म का पालन करते हुए मृत्यु भी हो जाय तो भी श्रेयस्कर है। गीता की रचना मानव इतिहास के एक ऐसे कालखण्ड में हुई थी जब सामाजिक व्यवस्था अपेक्षाकृत सरल भी। कर्म और गुण के आधार पर सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित थी और प्रत्येक के अपने–अपने कर्तव्य धर्म बतलाये गये, जिसे गीता में स्वधर्म की संज्ञा से संज्ञापित किया गया। स्वधर्म से तात्पर्य अपने वर्ण के अनुसार अपनी सामाजिक स्थिति के अनुसार कर्म करने से है। परन्तु आज वर्ण विभाजन की सीमा रेखा सिमट चुकी है या धुॅधली पड़ चुकी है। आज की जटिल सामाजिक परिस्थिति और जीवन की बदलती भूमिकाओं के सन्दर्भ में प्रश्न यह पैदा होता

है कि स्वधर्म का निश्चय कैसे हो? समाधान गीता से ही। सात्विक, राजस और तामस गुणों के साकल्य का नाम है मनुष्य। इन त्रिविध गुणों का न्यूनाधिक्य मानव मात्र में पाया जाता है और जिसमें जिस गुण की प्रबलता होती है उसी के अनुसार व्यक्ति का स्वरूप (व्यक्तित्व) निर्धारित होता है। अपने गुण और स्वभाव के अनुसार अपने कर्म का स्वयं चयन कर लेना चाहिये। यही स्वधर्म है। यह अत्यन्त ही व्यापक धारणा है जिसमें मनुष्य के सामाजिक दायित्व, उसकी शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के अनुसार उसकी कार्य करने की क्षमता, उसका स्वभाव, रूचियॉ, सामर्थ्य सबका समावेश हो जाता है। परन्तु यहॉ पर तथाकथित आधुनिक और प्रगतिवादी विचारक कह सकता है कि ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के रूप में विभाजित वर्ण व्यवस्था आज की सामाजिक परिस्थिति में अव्यवहार्य है और सामाजिक समरसता में बाधक है। इमानदारी से देखा जाय तो प्रगतिवादियों का यह आरोप शशश्रृंग की तरह विल्कुल निराधार भी नहीं है। वस्तुतः वर्ण व्यवस्था विकृत होते–होते जिस तरह से वर्तमान में जातिगत आधार (जन्मना) प्राप्त कर चुकी है वह तो सामाजिक उन्नयन के स्थान पर सामाजिक अधः पतन और सामाजिक समरसता के स्थान पर सामाजिक विषमता का कारण बनती जा रही है। ऐसे में प्रगतिवादी क्यों न वर्ण व्यवस्था का विरोध करें और जब वर्ण व्यवस्था ही स्वीकार्य नहीं तो वर्ण से सम्बन्धित स्वधर्म या स्वकर्तव्य कैसा। वस्तुतः स्वधर्म के दर्शन को समझने के लिये हमें बिना किसी पूर्वाग्रह के वर्ण व्यवस्था के मूलाधार पर चितंन करना चाहिये। गीता नायक कृष्ण स्वयं गीता में कहते हैं –

*‘चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः’*[4]

अर्थात गुण और कर्म के आधार पर मैंने चारों वर्णों का विभाजन किया है। वस्तुतः वर्ण विभाजन का आधार जन्मना था ही नहीं। यह तो उस विकृत सामाजिक व्यवस्था का दोष है जिसने वर्ण व्यवस्था को जन्मगत आधार प्रदान किया। आइये, थोड़ा गुणों के दर्शन पर भी प्रसंगवशात संक्षेप में विचार कर लें –

*शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरासर्जवमेव च*
*ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं व्रहमकर्म स्वभावजम्।।*[5]

शम, दम, शौच, क्षमा, अन्तःकरण की सरलता तथा ज्ञानविज्ञान और आस्तिकता ये सब ब्राहमण के स्वाभाविक कर्म हैं इसी तरह शौर्य, धृति, दक्षता, युद्ध में न भागना, दान, ईश्वर भाव ये सब क्षत्रियों के कर्म है।[6]

*कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।*

*परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।*[7]

कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य व्यापार जहॉ वैश्यों के कर्म हैं वहीं परिचर्यात्मक कर्म– सेवारूप कर्म शूद्रों के कर्म है। स्पष्ट है सतो गुण प्रधान व्यक्ति ब्राम्हण है और उन्हें ब्राम्हणों के स्वाभाविक कर्म करना चाहिये। रजो गुण प्रधान व्यक्ति क्षत्रिय हैं– उन्हें स्वाभावानुसार सामाजिक सुरक्षा का कार्य देखना चाहिये। रजो प्रधान तमो गुण वाले वैश्य हैं। उन्हें वाणिज्य व्यापार करना चाहिये और तमोगुण प्रधान व्यक्तियों को समाज में सेवा, सहयोग और सामन्जस्य का कार्य करना चाहिये। आज के सन्दर्भ में हम कह सकते हैं कि जिसका जैसा गुण और स्वभाव हो उससे संबंधित कर्तव्य का चयन उसे कर लेना चाहिये। अथवा अपनी सामाजिक स्थिति और जिम्मेदारी के अनुसार जिसको जो पद मिला हुआ है उससे सम्बन्धित कर्तब्य का प्राणपण से पालन करना ही स्वधर्म है। कितनी भी विपरीत परिस्थिति क्यों न आ जाय, मौत ही सम्मुख क्यों न खड़ी हो, किसी भी स्थिति में कर्तब्यपंथ से विचलित नहीं होना है। समाज का प्रत्येक सदस्य अपने पद के अनुसार जिम्मेदारियों का निर्वहन करे, तो निश्चित रूप से समाज की उन्नति होगी। हॉ, एक बात आज की परिस्थिति में विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि एक बार कर्तव्य का चयन कर लेने के उपरान्त मृत्यु भले ही हो जाय परन्तु उसका परित्याग कदापि और कथमपि नहीं करना चाहिये। यहॉ पर एक बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि जीवन की प्रत्येक स्थिति से संबंधित उपयुक्त कर्मों को विस्तार से यहॉ पर सुनिश्चित करना असम्भव है। इसीलिए गीता उनका निर्धारण व्यक्ति की सुबुद्धि या तात्कालिक विवेक पर छोड़ देती है। कदाचित ऐसी विषम परिस्थिति में कर्तव्य के निर्धारण के लिये गीता के सोलहवें अध्याय में दैवी और आसुरी सम्पदा वाले व्यक्तियों का लक्षण निरूपण किया गया है, उसी के आलोक में हमें स्वकर्तव्य का विनिश्चय कर लेना चाहिये। कोई भी कर्म स्वयं में उत्तम या अधम नहीं होता अपितु वह उसी मात्रा में स्तुत्य होता है जिस मात्रा में उसमें परकल्याण की भावना सन्निहित होती है। परहित भावना से किया गया कर्म चाहे वह एक राजनेता का हो, प्रहरी

का हो, न्यायाधीश का हो या हो जल्लाद का अथवा हो सफाई कर्मचारी का– समान रूप से स्तुत्य और प्रशंसनीय है। इस स्वधर्म का पालन करना कैसे है उत्तर गीता के दूसरे अध्याय के 71वे श्लोक से –

*विहाय कामान्य सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः*

*निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।*[8]

अर्थात् जो व्यक्ति समस्त कामनाओं और भोगों को पूर्णतः त्याग कर निःस्पृह, ममतारहित और अहंकार शून्य होकर अपने कर्तव्य का पालन करता है वह ब्राहमण हो जाता है। ऐसी ब्राह्मी चेतना युक्त युवा ही समाज और राष्ट्र को नेतृत्व और संबल प्रदान कर सकते हैं। आज आवश्यकता है ऐसे ही ब्राह्मी चेतना युक्त युवाओं की, जो अपने गुण और स्वभाव के अनुसार चयनित कर्तव्यों को करते हुये राष्ट्रीय विकास के ध्वजवाहक बन सके।

मेरी समझ से गीता के स्वधर्म का अर्थ ऐसे सामाजिक कर्तव्यों से लिया जा सकता है जिनके पालन से सामाजिक एकता सुदृढ़ होती है। सामाजिक सद्भाव और समरस सामाजिक ताने–बाने को नयी ऊर्जा प्राप्त होती है। वैश्विक क्षितिज पर यह समाज विश्व समाज का रूप धारण कर लेता है और तब स्वधर्म का अर्थ उन समस्त कर्तव्यों से हो जाता है जिससे बसुधैव कुटुम्बकम् और विश्ववारा संस्कृति का सम्पोषण होता है। कर्तव्य की इस भाव भूमि पर प्रतिष्ठित होते ही अपने और पराये का भेद मिट जाता है, तू और मैं के बीच की खाई सिमट कर शून्य हो जाती है। स्रष्टा की सम्पूर्ण सृष्टि आत्मवत् हो जाती है।

अंत में हम सार रूप में कह सकते हैं कि आज हमारे समक्ष विद्यमान समस्त संकटों और चुनौतियों का समाधान गीता के स्वधर्म सम्प्रत्यय के चिंतन, मनन और अनुपालन में है। आज मनुष्य के व्यक्तित्व से मन वाणी और कर्म की एकरूपता गायब हो चुकी है। परिणाम स्वरूप उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अन्दर से खोखला हो चुका है और इस खोखले व्यक्तित्व की भाव संवेदनाओं से बना, बुना उसका अपना संसार स्वयं के लिये ही छलावा बन गया है। परिणाम स्वरूप हमारे चतुर्दिक काम, क्रोध, लोभ, मोह मद मात्सर्य का कुहासा दिनानुदिन गहनतर होता जा रहा है।

तभी तो गीता नायक कृष्ण किंकर्तव्यविमूढ़, निस्तेज अर्जुन से कहते हैं– 'श्रृणु में परमं वचः।'' अर्थात् मेरे इन परम वचनों को सुनो। गीता के इन परम वचनों को समय और काल परिवर्तित नहीं कर सकते हालॉकि हमारे संसार के सभी सत्य समय की शर्तों से बंधे हुये है। समय बदल जाय तो इन्हें भी बदलना पड़ता है। लेकिन गीता के इन परम वचनों का मतलब ही है जब सारे सत्य बदल जाते हैं, सारे दर्शन और धर्म बदल जाते हैं, सिद्धान्त बदल जाते हैं, चिंतन की धारायें बदल जाती है तब भी ये जीवंत रहते हैं और अपने स्पर्श से जीवन को प्रकाशित, पवित्र और प्रखर करते हैं, उसे रूपान्तरित करते हैं। यही गीता की वर्तमान प्रासंगिकता है। तभी तो विश्वगरु कृष्ण स्वयं घोषणा कर देते हैं–

*'गीता में हृदयं पार्थं।'*

## *संदर्भ सूची*

1. दैनिक समाचार पत्र – 'आज', दिनॉक 12 फरवरी, 2013
2. रामधारी सिंह दिनकर – आग की भीख, कविता से साभार।
3. श्रीमद् भगवद्गीता3/35 गीताप्रेस गोरखपुर
4. वहीं, 4/13
5. वहीं, 18/42
6. वहीं, 18/43
7. वहीं, 18/44
8. वहीं, 2/71